श्रीमद्भगवद्गीता का कर्मयोग

अखिलेश कुमार पटेल*

श्रीमद्भगवद्गीता की प्रवृत्ति युद्ध से विरत हुये अर्जुन को युद्धरत करने के लिए हुई है और गीता का ज्ञान इसमें सफल भी रहा है। अतः मानना होगा कि गीता प्रवृत्तिप्रधान ग्रन्थ है।

सम्पूर्ण गीता निष्काम कर्मयोग का शास्त्र है, इसमें कर्मयोग के प्रत्येक पहलू पर विशद् रूप से विचार किया गया है। पूर्वकाल में वर्णन की रीति समास व्यास विधिना थी। किसी विषय को थोड़े शब्दों में कह दिया जाता था और आगे उसी का विस्तार किया जाता था। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी इसी परम्परा का अनुसरण किया, कर्मयोग को सूत्ररूप में एक श्लोक में कहकर उसी का विस्तार करते हैं :–

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।''[1]

तेरा अधिकार कर्म करने में है, फल में नहीं, तु कर्मफल का कारण मत बन, अकर्म में तेरा साथ न होवे।

''कर्मण्येवाधिकारस्ते'' कर्म करने में तेरा अधिकार है, कर्मयोग का यह प्रथमसूत्र है, इसमें बताया गया है कि जीवकर्म करने में स्वतन्त्र है, उसे कर्म करने से कोई नहीं रोकता है। मनुष्य की योनि की यही विशेषता है कि वह स्वेच्छानुसार कर्म कर सकता है। मुनष्य अपने कर्मों द्वारा ही अपने उत्थान–पतन का मार्ग तैयार करता है अपने कर्मों से ही देव, मनुष्य, दैत्य, पशु तिर्यक प्रभृति योनियों को भोगता है। गीता में इसके विपरीत श्लोक है :–

''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि माययाा।''[2]

ईश्वर सभी प्राणियों के हष्दय में रहता है तथा अपनी माया से उन्हें यन्त्र पर चढ़े हुए की भाँति घुमाता रहता है।

''प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।'' [3]

शोधच्छात्र राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान गङ्गानाथ झा परिसर इलाहाबाद

प्राणी मात्र अपने स्वभावानुसार ही बर्ताव करते हैं। प्रत्येक मनुष्य संसार में किसी न किसी विशेष प्रयोजन से ही आता है जो कि उसका जन्मजात स्वभाव होता है। उदाहरणार्थ अर्जुन को ले लीजिए पृथ्वी के भार को कम करने के उद्देश्य से उसका जन्म हुआ था, अतः इस कार्य में वह ईश्वर परतन्त्र हुआ और उसे यह कार्य करना ही होगा। एक सूत्र में कहा गया है कि **''मा कर्मफलहेतुः भूः''** कर्मफल का कारण मत बनो, कर्म करने पर उसका अच्छा या बुरा, कुछ न कुछ फल तो अवश्य ही होता है, वह फल मेरे ही उद्योग से हुआ है ऐसा मत समझो, क्योंकि कर्मफल का कारण केवल उद्योग ही नहीं है।

''अधिष्ठानं तथा कर्ताकरणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र प×चमम्।।'' [4]
भारीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः
न्याय्यं वा विपरीतं वा प×चैते तस्य हेतवः।[5]
तत्रैव सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।''[6]

कर्मो की सिद्धि में अधिष्ठान, कर्ता एवं विभिन्न प्रकार के करण तथा नाना प्रकार की चेष्टायें और दैव सहायक होते हैं। जो मनुष्य शरीर, मन या वाणी से कोई भी कर्म प्रारम्भ करता है तथा अज्ञानवश केवल अपने को ही कारण मानता है वह ठीक नहीं समझता है।

''प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।''[7]

सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। अहंकार से ग्रसित व्यक्ति अपने को कर्ता समझता है। यह कर्ता मानना ही बन्धन का कारण है। जब व्यक्ति अपने को कर्ता समझकर कर्मफल को अपने उद्योग का फल समझता है तो वह उसके पाप–पुण्य का भागी बनकर संसारचक्र में भटकता रहता है, कर्तापन का यह अभिमान ही उसे पाप–पुण्य से युक्त बनाता है। अन्यथा–

''गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।''[8]

त्रिगुण अपने गुणों से बर्ताव कर रहे हैं, ऐसा समझकर उनके द्वारा किये गये कर्मों में संसक्त नहीं होता है।

''यस्य नाहंकृतोभावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते
हत्वापि स इमान्लोकान्नहन्ति न निबध्यते।''[9]

मैंने यह कार्य किया है ऐसा अहं भाव जिसमें नहीं हो जिसकी बुद्धि कर्म में लिप्त नहीं होती वह त्रिभुवन के संहारक के सदृश घोर कर्म करे तो भी न तो

वह हत्यारा होता है और न ही कर्मबन्धन में बँधता है। भगवान् शंकर इसके साक्षात् उदाहरण हैं, सम्पूर्ण विश्व का प्रलय करने के बाद भी शिव कल्याण स्वरूप ही रहते है।

गीता में निष्काम कर्म की प्रेरणा दी गई है निष्काम कर्म का साधक अपनी समस्त इच्छाओं आकांक्षाओं को परमात्मा में समर्पित कर देता है तथा कर्मफल के प्रति उसकी आसक्ति नहीं रहती है।

''योगस्थः कुरू कर्माणि सबंत्यक्त्वा धन×जय
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।''[10]

आसक्ति को छोड़कर सिद्धि एवं असिद्धि के विषय में समबुद्धि को रखकर योग में स्थित होकर कर्म करना चाहिए।

हमें आसक्ति का परित्याग करके कर्मपालन करना चाहिए।

''ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सबंत्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।''[11]

जो व्यक्ति आसक्ति का परित्याग कर ईश्वरार्पण वृद्धि से कर्मो को करता है वह पानी में स्थित कमलपत्र की भाँति पाप–पुण्य से लिप्त नहीं होता है। इसलिए फलेच्छा का त्याग करके कर्मों को करना चाहिए।

अहंकार से युक्त व्यक्ति पाप कर्म में प्रवृत्त होता है, पाप हमेशा भोगेच्छा तथा स्वार्थबुद्धि से होता है। सकामकर्म भी अहंकार तथा यशादि की इच्छा से होते हैं, जिसमें अहंभाव नहीं होता है, इसमें न तो पाप हो सकते है, और न सकाम पुण्य। वह केवल अपने स्वभावानुरूप उस कर्म को करेगा, जिस कर्म विशेष के लिये विश्वनियन्ता ने उसे भेजा है। उसके द्वारा जो भी कर्म होता है, वह विश्वकर्ता की इच्छा से ही होता है। अतः वह उस कर्मफल में क्यों संसक्त होने लगा, फल से संसर्ग तभी होता है, जब उस फल में आसक्ति हो।

मैने उसे प्रकट किया है ऐसा अहंकार हो अतैव भगवान् इस अहंकार से जो कि मिथ्या अहकांर है, सावधान करते हैं।

कर्मफल को अपने उद्योग का फल समझकर उसका कारण मत बनो, यह तो प्रारब्ध की देन है, भगवान का प्रसाद है।

इस प्रकार गीता का कर्मयोग हमे आसक्तिरहित कर्म करने की प्रेरणा देता है।

सन्दर्भ सूची :–

1. भगवद्गीता 2/47
2. भगवद्गीता 18/61

3. भगवद्गीता 3/33
4. भगवद्गीता 18/14
5. भगवद्गीता 18/15
6. भगवद्गीता 18/16
7. भगवद्गीता 3/27
8. भगवद्गीता 3/28
9. भगवद्गीता 18/17
10. भगवद्गीता 2/48
11. भगवद्गीता 5/10